IJAER/November-December 2020/Volume-9/Issue-3 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

शिक्षा में भारतीय परंपराओं का समावेश

सुमन शेखावत
शोध छात्रा शिक्षा विभाग
महाराज विनायक ग्लोबल यूनिवर्सिटी जयपुर

डॉ मनोज लता सिंह
शोध निर्देशिका
महाराज विनायक ग्लोबल यूनिवर्सिटी जयपुर

सार

पूर्ववर्ती लेख्य में भारतीय परंपराओं शिक्षा के स्वरूप तथा उसके महत्वपूर्ण विभागों पर दृष्टिपात करते हुए वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के साथ तुलनात्मक एवं समयोपयोगी अनुशीलन प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में सारांश रूप में इस शोध के प्रमुख निष्कर्षों को आध्यायवार प्रस्तुत किया गया है। लेख्य प्रस्तावना तथा विकास शीर्षक से उल्लिखित किया गया है। इस अध्याय को नौ खण्डों में विभाजित किया गया है। पहले खण्ड में भूमिका का विवरण है। इसे शाब्दिक, शब्द कोषीय, भारतीय परंपराओं, परंपराओं एवम् व्यावहारिक दृष्टि से वर्णित किया गया है। दूसरे खण्ड में शिक्षा के विकास का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके अन्तर्गत यह बताया गया है कि शिक्षा का विकास राज्याश्रय, तीर्थ–भ्रमण, यज्ञानुष्ठान व धार्मिक आयोजन, देश–भ्रमण एवं सन्त महात्माओं आदि के उपदेश तथा गुरुकुल के माध्यम से किस प्रकार किया गया था।

मुख्य शब्द: *शिक्षा, भारतीय परंपराओं*

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केंद्रित होकर विनम्रता, सत्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था (ऋग्वेद, 10/71/7)। छात्रों को मानव, प्राणियों एवं प्रकृति के मध्य संतुलन को बनाए रखना सिखाया जाता था। शिक्षण और सीखने के लिए वेद और उपनिषद् के सिद्धांतों का अनुपालन जिससे व्यक्ति स्वयं, परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों को पूरा कर सके, इस प्रकार जीवन के सभी पक्ष इस प्रणाली में सम्मिलित थे।

शिक्षा प्रणाली ने सीखने और शारीरिक विकास दोनों पर ध्यान केंद्रित किया। कर्म वही है जो बंधनों

से मुक्त करे और विद्या वही है जो मुक्ति का मार्ग दिखाए। इसके अतिरिक्त जो भी कर्म हैं वह सब निपुणता देने वाले मात्र हैं (विष्णु पुराण, 1/9/41)। शिक्षा के इस संकल्प को भारतीय परंपरा में अंगीकृत कर तदनुरूप ही विश्वविद्यालयों और गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती थी। घर, मंदिर, पाठशाला तथा गुरुकुल में संस्कार युक्त स्वदेशी शिक्षा दी जाती थी। उच्च ज्ञान के लिए छात्र विहार और विश्वविद्यालयों में जाते थे तथा शिक्षण अधिकतर मौखिक था, छात्रों को कक्षा में जो विषय पढ़ाया जाता था उसको वो याद कर मनन करते थे।

प्राचीन काल की शिक्षा प्रणाली ज्ञान, परंपराएं और प्रथाएं मानवता को प्रोत्साहित करती थीं। पुराण में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है (ब्रह्माण्ड पुराण, 1/4/15)। भारत के तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, बल्लभी, उज्जयिनी, काशी आदि विश्व प्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केन्द्र थे तथा यहां कई देशों के शिक्षार्थी ज्ञानार्जन के लिए आते थे। भारतीय काल में महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रसिद्धि थी जिसमें मैत्रेयी, ऋतम्भरा, अपाला, गार्गी और लोपामुद्रा आदि जैसे नाम प्रमुख थे। बोधायन, कात्यायन, आर्यभट्ट, चरक, कणाद, वाराहमिहिर, नागार्जुन, अगस्त्य, भर्तृहरि, शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद जैसे अनेकानेक महापुरुषों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी मेधा से विश्व में भारतीय ज्ञान परंपरा के समिद्ध हेतु अतुल्य योगदान दिया है।

गुरुकुल शिक्षा के प्रमुख आधार स्तम्भ थे। शिक्षार्थी अठारह विद्याओं दृ छः वेदांग, चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वेद), चार उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद, शिल्पवेद), मीमांसा, न्याय, पुराण तथा धर्मशास्त्र का अर्जन गुरु के निर्देशन में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अनुष्ठानपूर्वक अभ्यास कर सम्पादन करते थे जिससे आजीविका निर्वहन में कोई परेशानी नहीं होती थी तथा प्रौढ़ावस्था तक आते–आते अपने विषय के निपुण ज्ञाता बन जाते थे। त्याग, वृत्तिसम्पन्न तथा धन की तृष्णा से परे आचार्य ही भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षक माना गया है। शिक्षा को व्यवसाय और धनार्जन का साधन नहीं माना जाता था। वायु पुराण (77/128) में उल्लेख है कि गुरु रूपी तीर्थ से सिद्धि प्राप्त होती है तथा वह सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है। प्राचीन भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा अति समृद्धि थी तथा इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को समाहित करते हुए व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करना था। जब सारा विश्व अज्ञान रूपी अंधकार में भटकता था तब सम्पूर्ण भारत के मनीषी उच्चतम ज्ञान का प्रसार करके मानव को पशुता से मुक्त कर, श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त कर संपूर्ण मानव बनाते थे।

प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तैयार की गई है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परंपरा और दर्शन में सदा सर्वोच्च लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन नहीं बल्कि पूर्ण आत्म ज्ञान और मुक्ति के रूप में माना

गया था। भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सतत् विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य चार में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास योजना के अनुसार विश्व में 2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन पर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने का लक्ष्य है। इस हेतु संपूर्ण शिक्षा प्रणाली को समर्थन और अधिगम को बढ़ावा देने के लिए पुनर्गठित करने की आवश्यकता होगी ताकि सतत् विकास के लिए 2030 एजेंडा के सभी महत्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार 2040 तक भारत के लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य होगा जो कि किसी से पीछे नहीं है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था जहां किसी भी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से संबिंधत शिक्षार्थियों को समान रूप से सर्वोच्च गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध हो सकेगी। यह 21वीं सदी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है तथा भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए, 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

अनुसंधान एवं ज्ञान के परिदृश्य में पूरा विश्व तेजी से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। मानविकी और कला की मांग बढ़ेगी क्योंकि भारत एक विकसित देश बनने के साथ–साथ दुनिया की तीन सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनने के साथ–साथ आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर है। वर्तमान में सीखने के परिणामों और जो आवश्यक है उनके मध्य की खाई को, प्रारंभिक बाल्यावस्था से देखभाल और उच्चतर शिक्षा के माध्यम से शिक्षा में उच्चतम गुणवत्ता, इक्विटी और सिस्टम में अखंडता लाने वाले प्रमुख सुधारों के जरिए पूर्ण किया जा सकता है।

शिक्षा व्यवस्था में किए जा रहे बुनियादी बदलाव के केंद्र में निश्चित तौर पर शिक्षक होने चाहिए। यह नीति निश्चित तौर पर प्रत्येक स्तर पर शिक्षकों को समाज के सर्वाधिक सम्माननीय और श्रेष्ठ सदस्य के रूप में पुनः स्थान देने में सहायक होगी। शिक्षा ही नागरिकों को हमारी अगली पीढ़ी को सही मायने में आकार देती हैं। इस नीति द्वारा शिक्षकों को सक्षम बनाने के लिए हर संभव कदम उठाए जाने की योजना है जिससे कि वे अपने कार्य को प्रभावी रूप से कर सकें। हर स्तर पर शिक्षण के पेशे में सबसे होनहार लोगों का चयन करने की योजना है। जिसके लिए उनकी आजीविका, सम्मान, मान मर्यादा और स्वायत्तता सुनिश्चित हो सकेगी। साथ ही तंत्र में गुणवत्ता नियंत्रण और जवाबदेही के बुनियादी प्रक्रियाएं भी स्थापित होनी हैं। इस नीति का उद्देश्य ऐसे अच्छे इंसानों का विकास करना है जिनमें करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मकता, कल्पना शक्ति, नैतिक मूल्य का समावेश हो तथा संविधान द्वारा परिकल्पित समावेशी और बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहतर तरीके से योगदान कर सकें।

उद्देश्य

1ण् भारतीय परंपराओं शिक्षा दर्शन का विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करना।

2ण् भारतीय परंपराओं शैक्षिक दर्शन एवं मूल्यों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना।

भारतीय एवं परंपराओं शिक्षा

भारतीय साहित्य में प्रथम स्थान वेदों का है। ये विश्व की प्राचीनतम साहित्यिक कृतियां हैं। श्वेदश शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की विद् धातु से हुई है जिसका अर्थ है जानना। विद् शब्द ज्ञान का द्योतक है। इस प्रकार से वेद शब्द का अर्थ है श्ज्ञानश। वेदों में भारत का प्राचीनतम ज्ञान सुरक्षित है। इनमें तत्कालीन आर्य सभ्यता, समाज, विद्या और धर्म उद्घाटित होता है। ऐसी मान्यता है कि वेद, दैवीय स्रोत से प्राप्त हुए हैं और शाश्वत हैं। वेद भारतीय संस्कृति का आधार हैं तथा भारत के प्राचीनतम धर्म ग्रंथ हैं। भारतीय परम्परा वेदों को अपौरुषेय मानती है। इसके अनुसार सृष्टि. के आरम्भ में ब्रह्म ने कुछ ऋषियों को मत्रोपदेश दिया था जो उन्होंने अपने शिष्यों को बताया, यह क्रम निरन्तर चलता रहा तथा यह ज्ञान श्रवण–परम्परा में सुरक्षित रहा। इसी कारण वेदों को श्श्रुतिश भी कहा जाता है।

वेदों की संख्या चार है – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्व वेद इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण रचना है।

1. ऋग्वेद

यह प्राचीनतम वेद मंत्रों का एक संकलन (संहिता) है जिन्हें यज्ञों के अवसर पर देवताओं की स्तुति के लिए ऋषियों द्वारा संग्रहित किया गया है। ऋक् का अर्थ छन्दो अथवा चरणों से युक्त मंत्र होता है। इस प्रकार ऋग्वेद से तात्पर्य ऐसे संग्रह से है जो छन्दों या ऋचाओं में आबद्ध हो। ऋग्वेद में आठ अष्टक तथा चौसठ अध्याय हैं। सम्पूर्ण ऋग्वेद दस खण्डों में विभाजित है जिन्हें श्मण्डलश कहा जाता है। मण्डल के मंत्र श्सूक्तश कहे जाते हैं और सूक्त के खण्ड श्ऋचाश कहे जाते हैं। ऋग्वेद में सूक्तों की संख्या 1028 है और मंत्रों की संख्या 110001 है। ऋग्वेद का रचनाकाल 1700 ई०पू० का माना जाता है।

ऋग्वेद की शाखाएं

ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं – शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शंखायन तथा माण्डूक्य। ऋग्वेद के दूसरे से सातवे मण्डल को सबसे प्राचीन माना गया है प्रथम और दशम मण्डल सबसे अंत में जोड़े गये हैं।

मण्डल एवं उनकी विषय वस्तु

मण्डल	विषय वस्तु	रचनाकार
प्रथम	देवस्तुति	-
द्वितीय	देवस्तुति	गुब्समद
तृतीय	देवस्तुति	विश्वामित्र
चतुर्थ	कृषि सम्बन्धी प्रक्रिया	वामदेव
पंचम	देवस्तुति	वशिष्ठ
षष्ठम्	गायत्री मंत्र	भारद्वाज
सप्तम	दशराज युद्ध	अत्रि
अष्टम	याज्ञिक क्रियाएँ	कण्व और अंगिरस
नवम्	सोमरस का उल्लेख	-
दशम्	पुरुष सूक्त	-

(इसमें विराट पुरुष के मुख, भुजा, जंघा और पैरों से चारों वर्णों की उत्पत्ति का सिद्धान्त बताया गया है।)

ऋग्वेद कालीन, विदुषी स्त्रिया

लोपामुद्रा (अगत्स्य ऋषि की पत्नी), घोषा, सिकता, अपाला, निवावरी, विश्वरा, विश्वपला, मृदगलानी आदि शिक्षा का उल्लेख किया गया है।

ऋग्वेद में सर्वाधिक सूक्त इंद्र को समर्पित हैं जिनकी संख्या 250 है। अग्नि को समर्पित सूक्तों की संख्या 200 है तथा सम्पूर्ण नवम् मण्डल सोम देवता को समर्पित है।

2. सामवेद

सामवेद शब्द की उत्पत्ति समन् धातु से हुई है जिसका अर्थ है लय या ताल । सामवेद की रचना श्उद्गाताश ऋत्विक के लिए की गयी है। इसमें यज्ञों के अवसर पर गाये जाने वाले मंत्रों का संग्रह है। साम का अभिप्राय गान है जिसमें सातों स्वरों का संयोग है। देवताओं की स्तुति में सामवेद की

ऋचाओं की संख्या 1549 है जिसमें से 75 ऋचाएं ही ऋक् संहिता से अलग और स्वतंत्र है सामवेद के मत्रों का गायन करने वाले को उद्गावा कहते हैं। सामवेद के दो भाग हैं – आर्चिक तथा गान।

आर्चिक – इसका अर्थ है ऋचाओं का समूह। इसके भी दो भाग हैं, पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक।

प्रथम में छः तथा द्वितीय में नौ प्रपाठक या अध्याय हैं।

सामवेद का प्रथम दृष्टा वेदव्यास के शिष्य महर्षि जैमिनी को माना जाता है। बाद में इसका विस्तार आचार्य सुकमी द्वारा किया गया। सामवेद की प्रमुख शाखाएँ है – कौथुमीय, जैमिनीय तथा राणयनीय ।

अन्य ग्रन्थों में भी सामवेद के गौरव का उल्लेख मिलता है। कहा गया है कि जो साम को जानता है वही वेदों के रहस्य को भी जानता है। श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं को वेदों में सामवेद कहा है –

वेदानांसामवेदोऽस्मि। (श्रीमद्भगवदगीता)

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में भी साम की प्रशंसा मिलती है। सामवेद को भारतीय

संगीत शास्त्र का मूल कहा जाता है।

3. यजुर्वेद –

यजुष का अर्थ यज्ञ होता है। अतः यजुर्वेद संहिता में यज्ञों को सम्पन्न कराने में उपयोगी मंत्रों का संग्रह किया गया है जिनका उच्चारण यज्ञों के अवसर पर श्अध्वर्युश पुरोहित द्वारा किया जाता है। यज्ञ आयोजन और अनुष्ठान में अध्वर्यु की महत्वपूर्ण भूमिका मानी गयी है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड प्रधान वेद है। इसमें यज्ञों की अनुष्ठान विधियों का भी उल्लेख मिलता है।

यजुर्वेद के दो भाग हैं – कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद इन दोनों की भी क्रमशः चार एवं दो शाखाएँ हैं।

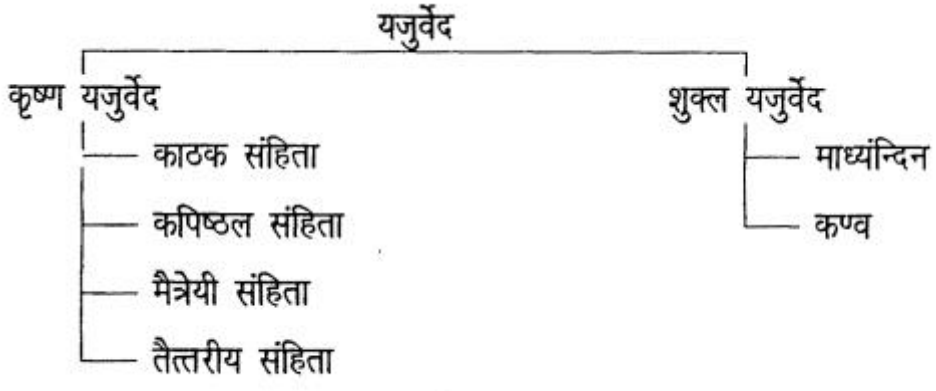

4.कृष्ण यजुर्वेद

इसमें छन्दबद्ध मंत्रों के साथ गद्यात्मक मंत्रों का भी विनियोग हैं इसकी चारों संहिताओं में यज्ञों का वर्णन है।

5. शुक्ल यजुर्वेद

इसमें केवल मंत्र हैं, विनियोग वाक्य नहीं हैं। इसे श्बाजसनेयी संहिताश भी कहते हैं क्योंकि बाजसेनी के पुत्र याज्ञवल्लक्य इसके दृष्टा है। इसमें कुल 40 अध्याय हैं। यजुर्वेद की रचना ऋग्वेद के बाद हुई थी। इसमें यज्ञीय विधानों के साथ–साथ अन्य कर्मकाण्डों का भी विस्तार से विवेचन किया गया है।

6. अथर्व वेद .

भारतीय संहिताओं में अथर्व वेद का अपना एक विशिष्ट स्थान है। जहाँ ऋग्वेद सहित तीनों संहिताओं में पारलौकिक विषय अधिक है। वहीं अथर्ववेद संहिता लौकिक फल देने वाली है। इसमें मोहन–मारण, उच्चाटन–विघटन और विवाह, श्राद्ध आदि क्रियाओं का विवरण है। इन क्रियाओं को कहने की विधियों तथा प्रकारों का भी वर्णन किया गया है। इसमें मानव जीवन को सुखी तथा दुःख रहित करने वले अनुष्ठानों का भी उल्लेख मिलता है।

अथर्वा नामक ऋषि इसके प्रथम दृष्टा थे, उन्हीं के नाम पर यह वेद, अथर्ववेद कहलाया। इसके दूसरे दृष्टा अंगिरस ऋषि थे, इस कारण इस वेद को अथर्वागिरस वेद भी कहा जाता है। अथर्ववेद की दो शाखाएँ उपलब्ध हैं – पिप्पलाद तथा शौनक । अथर्ववेद संहिता में 20 खण्ड, 731 सूक्त तथा 5987 मंत्रों का संग्रह है। इसके लगभग 1200 मंत्र ऋग्वेद से लिये गये हैं। इसकी कुछ ऋचाएं यज्ञ–संबंधी तथा ब्रह्मविद्या विषय पर हैं। इस कारण इसे श्ब्रह्मवेदश भी कहते हैं। इसके अधिकांश मंत्र लौकिक विषयों से संबंधित हैं। सामान्य जनजीवन के विचारों, विश्वासों तथा अन्धविश्वासों का भी विवरण इसमें प्राप्त होता है। रोगनिवारण, तंत्रमंत्र, जादूटोना, शाप, वशीकरण, आशीर्वाद, स्तुति, दीर्घायु, वृष्टि, विवाह, प्रायश्चित, प्रेम, राजकर्म, मातृभूमि, महात्म्य आदि विविध विषयों से संबंधित मंत्र इसमें मिलते हैं। आयुर्वेद के सिद्धान्तों तथा व्यवहार की चर्चा अनेक स्थानों पर की गयी है। इस प्रकार यह वेद, लौकिक आचार–व्यवहार का एक विश्वकोष है। संस्कृत–काव्य की दृष्टि से यह उच्च कोटि का संकलन है। यह भाषा तथा छन्द की दृष्टि से ऋग्वेद के बहुत बाद की रचना है। इसकी भाषा शैली अनेक रूपों में ऋग्वेद से अर्वाचीन है। इसमें तत्कालीन सभ्यता का स्वर भी वर्णित है। कुछ विद्वान इसमें आर्य–अनार्य तत्वों का समन्वय भी मानते हैं।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

आज की शिक्षा व्यवस्था में धन सम्पन्न वर्गों के लिए शिक्षा अत्यंत सुलभ है जबकि साधन हीन बालकों और तरूणों को उससे वंचित कर दिया गया है परन्तु दोनों . ही वर्गों को शिक्षा की विडम्बना यह है कि यह निरन्तर लक्ष्य से भटक रही है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में कर्तव्य परायणता के स्थान पर प्रमाण पत्र एवं उपाधियां दिलाने का ही प्रयास किया जाता है। आज की शिक्षा व्यवस्था

में आदर्शों और समर्पण का नितान्त अभाव है। आज की शिक्षा प्रणाली के कारण लक्ष्य से भटका युवावर्ग पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति को सत्य मानकर भौतिक सुखों के पीछे दौड़ रहा है, जिससे शिक्षा के नैतिक मूल्यों का निरन्तर पतन हो रहा है।

वर्तमान शिक्षा पद्धति मानवता के गुणों का विकास नहीं कर पा रही है जो भारतीय और परंपराओं शिक्षा प्रणाली का मूल आधार था। वेदों–पुराणों की शिक्षा, मानव को भावी जीवन के लिए तैयार करने के साथ ही उसे कर्तव्यपरायण बनाती थी, जबकि आज शिक्षित व्यक्ति आचरणहीन, हृदयहीन तथा मानवता हीन हो रहा है। आज शिक्षा में चरित्र निर्माण का कोई स्थान नहीं है। किसी भी स्तर की शिक्षा उच्च गुरु–शिष्य सम्बन्धों, आत्मविकास तथा जीवन को पूर्णता प्रदान करने में सक्षम नहीं है। आधुनिक समय में समाज में तीव्र गति से मानवीय तथा सामाजिक मूल्यों का हास हो रहा है। इस पतन को रोकने में कदाचित हमारी प्राचीन भारतीय परंपराओं शिक्षा का अध्ययन एवं विश्लेषण हमारा समुचित मार्गदर्शन कर सकता है।

जहाँ तक मेरी जानकारी है प्राचीन शिक्षा के बारे में उपनिषदों, रामायण तथा महाभारत के अन्तर्गत विद्यमान शिक्षा की अवधारणाओं पर तो कुछ, बहुत कार्य हुआ है परन्तु भारतीय परंपराओं शिक्षा का क्षेत्र अछूता रहा है।

अतः ष्भारतीय परंपराओं शिक्षा तथा वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रासंगिकता का समीक्षात्मक अध्ययनष् करने की नितान्त आवश्यकता है। अतः वर्तमान शोध अध्ययन,शोधकर्ता द्वारा इस दिशा में किया गया एक लघु प्रयास है।

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि आज के सन्दर्भ में गुरु–शिष्य के आत्मीय सम्बन्ध, शाश्वत् मूल्यों की शिक्षा के द्वारा, शिक्षा में व्यावहारिक सुधार की अति आवश्यकता है। अध्याय के चतुर्थ खण्ड से लेकर अष्टम् खण्ड तक क्रमशः शोध समस्या का निरूपण, अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व, शोध अध्ययन के उद्देश्य, शोध–विधि, संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण, अनुसंधान उपलब्धियों का निर्वचन एवं रिपोर्ट का स्पष्टीकरण किया गया है।

द्वितीय अध्याय ष्भारतीय परंपराओं शिक्षाश शीर्षक से विवेचित किया गया है। इस अध्याय में वेद–पुराण कालीन शिक्षा का एक चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह अध्याय चार खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड में भारतीय –परंपराओं साहित्य के सामान्य स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए पंचलक्ष्णात्मक (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित) पुराण तथा उपपुराणों को वर्ण्य विषय चित्रित कर, भागवत् और ब्रह्मवैवर्त पुराण में प्रतिपादित पुराण के दस लक्षणों का निरूपण कर उन्हें पंचलक्षणों में ही समाहित किया गया है। इस अध्याय के दूसरे खण्ड में भारतीय तथा परंपराओं साहित्य में विद्या, कर्म और ज्ञान के महत्व को निरूपित किया गया है कि यह शिक्षा मानव की पूर्णता, कर्तव्यपरायणता और आध्यात्मिक उत्कर्ष का माध्यम है। उक्त तीनों की साधना का उत्कर्ष पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में निहित है। भारतीय –परंपराओं शिक्षा की इस अवधारणा में जीवन का

सर्वस्व आ जाता है। परंपराओं अवतार कथायें भी धर्म और आदर्श की स्थापना, उच्च नैतिकता की प्रेरणा का माध्यम है। भारतीय परंपराओं शिक्षा इन सभी माध्यमों से सद्–असद् विवेक का आह्वान करने में समर्थ है। इसी अध्याय के तीसरे खण्ड में वेद पुराणकालीन शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों का निरूपण किया गया है।

संदर्भ

1. अरविंद, श्री. 1968. भारतीय संस्कृति के आधार. अरविंद सोसायटी, पुच्चेरी.
2. देवराज. 1950. संस्कृत का दार्शनिक विवेचन. प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश.
3. लाल, रमन बिहारी. 1996–1997. शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रस्तोगी पब्लिकेशंस, मेरठ.
4. राधाकृष्णन, एस. 1994. भारतीय दर्शन, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.
5. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद. 2012. क्षितिज भाग–2, नयी दिल्ली.
6. सैनी, कश्मीरी लाल और किरण मेहरोत्रा. 2006. गद्य संकलन. ऐवरग्रीन पब्लिकेशंस (इंडिया) लिमिटेड, नयी दिल्ली.
7. अनिल कुमार, पी.एम. और टी.सी. आइशाबी. 2008. स्टूडेंट–एवेयरनेस ऑफ़ वैल्यूज़ इन द कंटेंट ऑफ़ सेकेंडरी लेवल इंग्लिश एजुट्रैक्स, अप्रैल 7(8) पू.31.
8. अवस्थी, ओ.एम. 2000. करिकुलम डवलपमेंट इश्यू एंड कंसर्स, जर्नल ऑफ़ इंडियन एजुकेशन, 25 (4). पृ. 115–124.
9. गुप्ता, मधु, पूजा पसरिजा और कृष्ण कुमार बंसल, 2012. ए स्टडी ऑफ़ कंटेंपोरेरी वैल्यूज़ मैनिफेस्टेड इन स्कूल टीचर्स इन रिलेशन टू देयर लोकैलिटी एंड क्वालिफ़िकेशंस, जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल एंड साइकोलॉजिकल रिसर्च, जनवरी. अंक 2 (1). पृ. 62–68.
10. पांड्या, आर.एस. 2010, एजुकेशनल रिसर्च, एपीएच पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, नयी दिल्ली.
11. बेरेल्सन, बी, 1952. कंटेंट एनालिसिस इन कम्यूनिकेशन रिसर्च, ग्लेको, प्प्. फ्री प्रेस.
12. भाग:, 1990. वैल्यू आइडेंटीफ़िकेशन इन ग्ज स्टैंडर्ड इंग्लिश प्रोज़ एंड वैल्यू ओरिएंटेशन ऑफ़ प स्टैंडर्ड स्टूडेंट. अनपब्लिश्ड एम.एड. डिज़र्टेशन. मद्रास यूनिवर्सिटी, मद्रास.
13. राज गोपाल,टी. 1989.आइडेंटिफ़िकेशन ऑफ़ वैल्यूज़ इन स्टैंडर्ड तमिल टेक्स्ट बुक्स एंड वैल्यू ओरिएंटेशन ऑफ़ ग्प –– स्टैंडर्ड स्टूडेंट. अनपब्लिश्ड एम. फिल. डिज़र्टेशन. अलागापा यूनिवर्सिटी.